❀ श्रीदिव्यमाधुर्यैश्वर्यपूर्णाय श्रीरामचन्द्रायनमः ❀

॥ मुमुक्षुओं की सेवा में ॥

संसार की गति इसकी नश्वरता और दुःख परायणता सिद्ध कर दिखाती है फिर भी अविज्ञानी मनुष्य हम आगे बढ़ें तो हम उससे भी आगे बढ़ें ऐसी धारणा अजरामरवत् होकर सफल कर दिखाना चाहते हैं। यही नहीं इसलिये जघन्य से जघन्य (नीचातिनीच) कर्म करके मनुष्यता को कलङ्क लगाते भी नहीं हिचकते और यमयातना भोगने का भी भय भूल जाते हैं। ऐसे ही लोगों को क्षणिक सफलता पर गर्व करते देखकर श्रुति भगवती ने कहा है कि—

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते॥

—मुण्डक १--२--९।

"अविद्या में सब प्रकार से फँसे हुए संसार में हम सुखी हैं, कृतार्थ हैं, इस प्रकार से मन्दमति समझते हैं, उसका अन्तिम दुःखमय परिणाम न समझ कर मोह राग में फँस कर आतुर मनुष्य अन्त में नीचे गिर जाते हैं। इस तत्त्व को समझने वाले तत्त्व ज्ञानी भगवद्भक्त सांसारिक मोह तोड़ कर प्रभु के धाम का पुण्यतम मार्ग पकड़ लेते हैं और दुःख से तर जाते हैं। "येनाहं नामृती स्यां किमहं तेन कुर्याम्" "जिसे लेकर हम अमर न हो जायँ। उसे लेकर के ही हम क्या करें ? यही सिद्धान्त जिनका

हो गया है वे महाभागवत सद्गुरु के शरण जाकर उस अमर तत्त्व का उपदेश प्राप्त करते हुए श्रीगुरु-कृपा द्वारा प्राप्त तप और श्रद्धाधन के धनिक जंगल में रहकर भिक्षाटन से निर्वाह करने वाले वे शान्तचित्त ज्ञानी विद्वान् सूर्य द्वार से अति क्रमण कर अमृतधाम को प्राप्त कर लेते हैं—

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः
सूर्य द्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषोह्यव्ययात्मा।

मुण्डक, १-२-११।

मुमुक्षों की अभिलाषा अमर होती है, इसीलिये वे सत्य सङ्कल्प कहलाते हैं, सङ्कल्प करना ही है तो शुभ सङ्कल्प करें और वे भी ऐसे जो सबसे उच्च बना सकें। 'तन्मे शिवसङ्कल्पनस्तु' ही मुमुक्षुओं की मूल्यवान् मांग होती है, 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' बन जाना ही उनका एक ध्येय हो जाता है। एक बार संसार की ममतासे मायामोह तोड़ लेनेपर अखिल विश्वके समेत विश्वनायक मोक्षकामी का अपना सर्वस्व धन हो जाते हैं। इसीलिये श्रुति भगवती का कथन है कि—

यं यं लोकं मनसा संविभाति,
विशुद्ध सत्त्वः कामयते यांश्च कामान् ॥
तं-तं लोकं जयते तांश्चकामां
स्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूति कामः ॥

—मुण्डक, ३।१।१०।

विशुद्ध सत्त्व मुक्तात्मा जिस-जिस लोक की इच्छा करता है वह लोक उसके वश में हो जाता है, अतएव आत्मतत्त्वज्ञ प्रभु के प्यारे भक्त की पूजा परमैश्वर्य पाने की इच्छा करने वालों को भी सर्वदा ही करनी चाहिये।

हमें आगे बढ़ना है और वहां तक आगे बढ़ना है जिसके आगे फिर कुछ नहीं है। जब हम आगे बढ़ना चाहते हैं तो पिछली भूमि को अन्तिम प्रणाम कर लेना ही आवश्यक है। अगर विजयी बने तो उस सार्वभौम सत्ता को पाकर कृतार्थ हो जायँगे और सफल नहीं भी हुए तो इससे तो कुछ आगे बढ़ेगें ही, जितना रास्ता तय हो जाय अच्छा ही है 'बहूना जन्मना--मन्ते' में से एक तो घटेगा ही, परन्तु यह काम कायर कपूतों का नहीं है, 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' यह आत्म कृपा निर्बलोंके नसीब में लिखी ही नहीं है। उसको प्राप्त करने के लिये तो जाग्रत पुरुष ही भाग्य निर्माण कर सकता है।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया--
दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति ॥

— कठोपनिषद् १--३--१४

"उठो ! जागो ! अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिये तैयार हो जाओ, बड़ा कठिन मार्ग है, तलवार की धार पर दौड़ना है।" जरा भी असावधानी हुई तो ऐसा गिरोगे कि कहीं

ठिकाना ही न लगेगा। इसलिये अब जग जाओ, औंधाये हुए उट पटांग मार्ग पर दौड़ते फिरे तो घायल हो जाओगे, यह मानव देह बार--बार नहीं मिलता, सावधान होकर अपना मार्ग पकड़ लो। असत्य से सत्य, अध्रुव से ध्रुव, क्षय से अक्षय, परि-मित से अपरिमित सान्त से अनन्त की ओर आगे बढ़ो, जो अविनाशी को त्याग कर नाशवान् पदार्थों की ममता में लपटाता है उसका नित्य सुख भी नष्ट हो जाता है। अनित्य तो नष्ट है ही, इस तत्त्व को जान लेने पर मनुष्य प्राकृत सुखों को ठुकरा कर दिव्यधाम के पथ पर प्रयाण कर देता है। उस दिव्य विभूति को ही त्रिपाद् विभूति के नाम से वेद-शास्त्र और सन्त पुकारते हैं। परन्तु उसको प्राप्त करने के लिये श्रीराम--कृपा ही एक मात्र उपाय है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष विवृणोति तनूँ स्वाम्॥
नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो ना समाहितः।
नाशान्तमानसा वापि प्रज्ञानेनैनमवाप्नुयात्॥

-- कठोपनिषद् १-२-२२-२३।

यह आत्मा बहुत बोलने वाले को नहीं मिलता है। अच्छे वक्ता-कथाकार-उपदेशक या कुशल लेखक प्रायः ऊपर से ही ज्ञान छांटते हैं, भीतर का प्रकाश अत्यन्त मेधावी (बुद्धिशाली) बन जाने से भी प्रकट नहीं होता, रात दिन पोथी-पुराण सुनते

रहने से भी कुछ तत्त्व अनायास हाथ नहीं लग जाता, यह परम-धन तो प्रभु कृपा कर जिसको देना चाहते हैं उसी को हाथ लगता है, दूसरा कोई मार्ग उसको प्राप्त करने का नहीं है वह जिसको चाहता है उसी के सामने अपना रहस्य प्रकट करता है। बड़ा साहसी-परिश्रमी-दुश्चरित्र-अशान्त मन वाला--चञ्चल कितना भी बड़ा ज्ञानी हो जाय इसको प्राप्त नहीं कर सकता है। इसके विपरीत जो प्रभु की कृपा का बल प्राप्त कर चुके हैं—

ते वै विदन्त्यति तरन्ति च देवमायां—

स्त्री--हूण—शबरा अपि पापजीवाः।

— श्रीमद्भागवत,

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते,

तथा —

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात्।

भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशित चेतसाम्।

—गीता--१२-७।

"वे स्त्री-हूण-शबर आदि पापी जीव भी उनके शरण जा-कर उनकी कृपा के प्रभाव से देव माया का स्वरूप जान लेते हैं और उसको तर भी जाते हैं, मेरी दुर्जय माया को जो मेरे शरणा-गत आते हैं वे ही तर सकते हैं। जो मेरे चरणों में चित्त लगाये हैं उनको मैं शीघ्र ही मृत्यु रूप संसार सागर से पार कर देता हूँ।" आदि वचनों से अज्ञेय तत्त्व का ज्ञान—अप्राप्य की

प्राप्ति और दुस्तर का तरण भगवत्कृपा से परम सुलभ हो जाना ही सिद्ध हो जाता है। श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में भी—

लोकान्सान्तानिकान्नाम यास्यन्तीमे समागताः ॥
यश्च तिर्यग्गतं किञ्चित्त्वामेवमनु चिन्तयन् ।
प्राणांस्त्यच्यति भक्त्या तत्सन्तानेषु निवत्स्यति ॥

—वाल्मीकि रामा० उत्तर० ११० सर्ग श्लोक १८। १९

"जो तिर्यग् योनि में गये हुए भी आपका ही रात दिन स्मरण करते हैं, सर्वतो भावेन आपको ही भजते हैं और आपका चिन्तवन करते हुए प्राणों का परित्याग करते हैं वे सान्तानिक लोक में निवास करेंगे।" इस वाक्य से भगवान् का स्मरण करने वालों को ही प्रभु धाम के निवासी बनने का सौभाग्य प्राप्त होता है, यह श्रीब्रह्माजी ने कहा है, सान्तानिक-लोक साकेतधाम का ही दूसरा नाम है। अस्तु—

उपर्युक्त अवतरणों के सिवा और अनेकों प्रमाण आगे ग्रन्थ में पाठकों को मिलेंगे। यह मोक्षधाम प्राप्त करना ही मुमुक्षुओं का एक मात्र ध्येय होना चाहिये आज का संसार अशान्ति की आग में झुलस रहा है, वह भूल गया है कि 'तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्" उसको ही शाश्वत सुख मिल सकता है जो स्वार्थों की

मारा मारी से पिंड छुड़ा कर * दिव्य धाम के पथ पर चलेगा, दूसरों को दुःख सागर में ही गोते लगाने पड़ेंगे, आज हम "जिमि हरि शरण न एकौ बाधा" भूल कर स्वतन्त्र बनना चाहते हैं, इसलिये हमारे हृदय से पाप पुण्य, धर्म-अधर्म, न्याय अन्याय की भावना निकल गयी है और हम एक भाई का गला घोंटकर एक देश का या एक जाति का विनाश कर अपने आपको सुखी बनाने के फेर में यमयातना जैसा घोर दुःख एवं काम-क्रोध द्वेष ईर्ष्या की आग में धधकते रहते हैं, आओ ! प्यारे मुमुक्षुओं ! आओ ! तुम हमारे भाई हो, हम सब मिलकर उस दिव्य पथ पर प्रस्थान कर दें और इन भवबाधाओं से मुक्त होकर उस जगह चलें जायँ "यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः" जहां जाकर फिर वापस नहीं आना पड़ता। उसकी जानकारी के लिये श्रीसद्गुरु और सन्तों की कृपा से जो कुछ उपलब्ध हुआ वह "त्रिपाद महा-

* **"दिव्यधाम के पथ पर"** और **"दिव्यधाम की झांकी"** नामक दोनों पुस्तक प्रभु के धाम विषय की सुन्दर बातें समझाने में अत्युत्तम हैं। 'पुस्तक भण्डार' लहेरिया सराय, [दरभंगा] के पते से मिलती हैं। इन पुस्तकों में श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के उपासक भावनागम्य प्रभु के दिव्यधाम की किस प्रकार भावना करते हैं और दिव्यधाम के सप्तावरण एवं प्रभु परिकरों के और प्रभु के भवन कौन किस तरफ किस रूप में हैं, आदि रहस्य वर्णन किया गया है।

विभूति साकेतधाम" नामक निवन्ध में आगे आपकी सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है, इसमें जो कुछ त्रुटियां रह गयीं हों सुधार कर स्वीकार करेगें । मैं तो आप भागवतों का अनुचर ही हूँ, यह सौभाग्य भी आप श्रीवैष्णवों की और श्रीगुरु महाराज की दया से ही प्राप्त हुआ है जो उस दिव्य विभूति के विषय में बोलने की अनधिकार चेष्टा कर सका, आशा है अपनी अहैतुकी दया से मुझ पामर को भी अपना अनुगामी बनाकर प्राणवल्लभ प्रभु के श्रीपादपद्मों तक पहुँचा देने की कृपा करेगें ।

श्रीरामानन्द--आश्रम
जनकपुर धाम
श्रीरामानन्द--जयन्ती
२००३ वि०

भक्तपदरेणु—
अवधकिशोरदास
"श्रीवैष्णव"
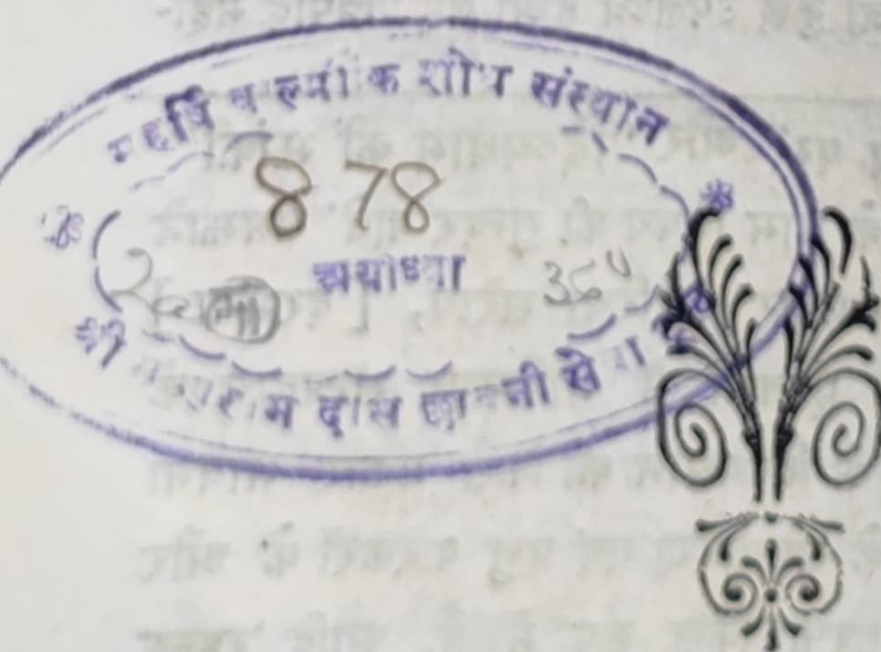
❀ श्रीसाकेताधीश्वरायनमोनमः ❀

नमः परमाचार्यवर्याय भगवते श्रीरामानन्दाचार्याय

श्रीसद्गुरु चरणकमलेभ्योनमः

❀ त्रिपाद् महाविभूति ❀

❀ दिव्य साकेत धाम ❀

❀ मङ्गलाचरणम् ❀

त्रिपाद्विभूतिपतये नित्यधाम निवासिने ।
भक्त कल्पद्रुमाय श्रीसीतायाःपतयेनमः ॥

❀ त्रिपाद् विभूति और वेद ❀

त्रिपाद-महाविभूति साकेतधाम का शास्त्रों में अपरिमित प्रभाव गाया गया है। इसी नित्य लोक ललाम परम अभिराम धाम को ही श्रीअयोध्या–सत्या--कोशला-चिद्विभूति-पर वैकुण्ठ-परमधाम- अक्षरधाम गोलोक- कैवल्य परमपद इत्यादि अनेकों नामों से पहचाना जाता है। योगी ज्ञानी-भक्त-सभी उस परम-पद को पाने के लिये सर्वदा प्रयत्न करते रहते हैं। समस्त ब्रह्माण्ड गोलक एक पाद विभूति है और नित्यधाम त्रिपाद महाविभूति कहलाता है, अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड उसी भगवन्मय दिव्यविभूति के सामने "एकांशेनस्थितं जगत्" माना जाता है.

वेदों में भी ब्रह्माण्ड गोलक को 'पादोऽस्य विश्वाभूतानि' बतलाया गया है, भगवान् सर्वेश्वर परब्रह्म प्रभु श्रीरामजी एक पाद विभूति (जगत्) और त्रिपाद विभूति (नित्य धाम) दोनों के स्वतंत्र स्वामी होने के कारण 'उभय विभूति नायक' कहे जाते हैं। संसार की प्राकृत विभूति का परिचय तो थोड़ा बहुत सभी जानते हैं, सब उसी में लपटाये हैं, परन्तु जब तक इसकी नश्वरता का और दिव्यविभूति के चिन्मय नित्य ऐश्वर्य का यथार्थ ज्ञान न हो जाय तब तक अध्रुव [नाशवान्] से मन को हटा कर ध्रुव [नित्य] सुख की प्राप्ति के लिये लालायित होना असम्भव है, इसलिये यहां उस परमधाम के महत्त्व के प्रतिपादक कुछ शास्त्रीय प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं--

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरूषः।
पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

—ऋग्वेद-मं० १० अ० ७ सू० ६० मं० ३।

—यजुर्वेद अध्याय ३१ मं० ३। ४।

पुरुष एवेदँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं देवि ॥

—सामवेद-पूर्वार्चिके प्र० ७-अर्द्ध प्र० ३ द० १३ मं० ४।

त्रिभिः पद्भिर्यमारोहत पादोस्येहाभवत् पुनः।

—अथर्व० काण्ड १६ अ० १ सू० ६ अनु० १ मं० १।

इसी भाव से मिलते जुलते मन्त्र वेदों में अन्यत्र भी कई वार आये हैं। अब वेदान्त के उपनिषदों के कुछ प्रमाण भी देखिये —

त्रिपाद विभूति और उपनिषद्

तावानस्य महिमा ततो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य सर्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

— छान्दोग्य. अ० ३ खं० १२ मं० ६।

अमृत नादोपनिषत् प्रतिपाद्यं पराक्षरम्।
त्रैपादानन्द साम्राज्यं हृदि मे भातु सर्वदा ॥

— अमृतनादोपनिषद् अ० १ मं० १।

परम हंसोपनिषद् वेद्यापार सुखाकृतिः।
त्रैपाद श्रीरामतत्त्वं स्वमात्रमिति चिन्तये ॥

—परमहंसोपनिषद् अ० १ मं० १

अमृत बिन्दूपनिषद् वेद्यं यत्परमाक्षरम्।
तदेव हि त्रिपाद्रामचन्द्राख्यं नः परागतिः ॥

— अमृतबिन्दूपनिषद् अ० १ मं० १

योगेश्वर्यञ्च कैवल्यं जायते यत्प्रसादतः।
तद्वैष्णवं योगतत्त्वं रामचन्द्र पदं भजे ॥

— योगतत्त्वोपनिषद् अ० १ मं० १।

यन्महावाक्य सिद्धान्त महाविद्याकलेवरम् ।
विकलेवर कैवल्यं रामचन्द्र पदं भजे ॥
— महा वाक्योपनिषद् अ० १ मं० १ ।

यद्दिव्यनाम स्मरतां संसारो गोष्पदायते ।
स्वानन्य भक्तिर्भवति तद्रामपदमाश्रये ॥
- कलिसन्तरणोपनिषद् अ० १ मं० १ ।

जाबाल्युपनिषद् वेद्य परतत्व स्वरूपकम् ।
पारमैश्वर्य विभवं रामचन्द्र पदं भजे ॥
- जाबाल्युपनिषद् अ० १ मं० १ ।

बह्वृचाख्य ब्रह्मविद्या महाखण्डार्थ वैभवम् ।
अखण्डानन्द साम्राज्यं रामचन्द्र पदं भजे ॥
— बह्वृचोपनिषद् अ० १ मं० १ ।

ईशाद्यष्टोत्तरशत वेदान्तपटलाशयम् ।
मुक्तिकोपनिषद् वेद्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥

इन सब वेद और वेदान्त के वचनों का तात्पर्य यही है कि त्रिपाद् विभूति नायक परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी की प्राप्ति ही जीवन का सर्वोत्तम ध्येय है, सभी शास्त्रों का अन्तिम सार-तत्त्व उन्हीं के दिव्य धाम के निवासी बन कर उनकी सेवा का चिन्मय रस पान करना ही निर्विवाद सिद्धान्त है। उपर्युक्त मन्त्रों का विशुद्ध अर्थ श्रीवैष्णव विद्वानों से समझ लेना चाहिये। इस तत्त्व के प्रतिपादक अन्य प्रमाण इस प्रकार है—

* त्रिपाद विभूति और पुराण *

पुराणों में परम श्रेष्ठ श्रीमद्भागवत में प्रभु के धाम का इस प्रकार वर्णन है—

न यत्र कालोऽनिमिषां परः प्रभुः-
कुतो नु देवा जगतां य ईशिरे।
न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च--
न वै विकारो न महान्प्रधानम् ॥
—भागवत, २ स्कं० २ अ० २ श्लो० १७।

पादेषु सर्व भूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः।
अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोऽधायि मूर्धसु ॥
—भाग० स्कंध २ अ० ६ श्लो० १८

मर्त्यो मृत्यु व्याल भीतः पलायन्--
लोकान्सर्वान् निर्भयं नाध्यगच्छन्।
त्वत्पदाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य-
स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥
—भाग० स्कं० १० अ० ३ श्लो० २७।

तद्वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो-
ब्रह्मेति यद्विदुरजस्र सुखं विशोकम्।
सध्यूङ् नियम्य यतयो यमकर्त हेतिं-

जत्घु: स्वराडिव निपानखनित्रमिन्द्रः ॥

—भाग० स्कं० २ अ० ७ श्लो० ४८।

तस्मै स्वलोकं भगवान् सभाजितः सन्दर्शयामास परं न यत्परम्
व्यपेत संक्लेश विमोहसाध्वसं स्वदृष्टवद्भिर्विबुधैरभिष्टुतम्।
प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तयोः सत्त्वं च मिश्रं न च काल विक्रमः
न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः ॥

—भाग० स्कं० २ अ ६ श्लो० ६-१०

वेदों ने भी त्रिपाद महाविभूति को ही परमपद माना है, उपनिषदों ने उस परम धाम के नायक श्रीरामजी ही हैं यह स्पष्ट घोषित किया है, श्रीमद्भागवतने भी सत्त्व-रज-तम-विकार प्रकृति के गुण-मृत्यु क्लेश-अज्ञानादिक से सर्वथा रहित प्रभु के दिव्य धाम को ही त्रिपाद विभूति के नाम से संबोधित किया है। उस धाम को विगताभिमान भगवच्छरणागत ही प्राप्त करते हैं। वेद और उपनिषद् में उस धाम को साकेत और अयोध्या के नाम से पुकारा गया है। यथा –

तदेव त्रिपाद्विभूति वैकुण्ठस्थानम्,
तदेव परमसाकेत महाकैवल्यम्,
तदेवाबाधित परमतत्त्व विलास विशेषमण्डलम्।

—त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद् उ० २ अ० ७ मं० ७

वही त्रिपाद विभूति वैकुण्ठ स्थान है, वही परमधाम साकेत है, वही महाकैवल्यमुक्ति है, वही त्रिकालाबाधित परम-

तत्त्व है, वही रसनिष्ठ सन्तों के नित्य दिव्य चिद्विलास का विशेष मण्डल है। वेदों ने परब्रह्म के उस धाम को श्रीअयोध्या-जी के नाम से प्रतिपादन किया है। यथा —

त्रिपाद विभूति (अयोध्या) साकेतधाम ही है।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्तिसूरयः। दिवीव चक्षुराततम्

—यजुर्वेद अ० ६ मं० ५।

भगवान् विष्णु के उस परम पद को भगवद्रहस्य जानने वाले दिव्य सूरि सदा देखते हैं। वह आकाश में आदित्य (सूर्य) मण्डल की तरह महान् तेज का विस्तार करता हुआ नित्य स्थित है। उस परम प्रकाश की झाँकी का कुछ दिग्दर्शन गीता-कार ने भी बतलाया है —

दिवि सूर्य सहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥

—गीता अ० ११ श्लो० १२।

आकाश में एकाएक हजारों सूर्य एक साथ उदित हो जायँ, उनकी महान् प्रभाके समान प्रभु के तेज की कुछ कल्पना की जा सकती है। 'विष्णोर्यत्परमं पदम्' 'विष्णोः पदं निर्भयम्' आदि वैदिक वचनों को पढ़कर प्रायः सर्व साधारण जन समाज प्रचलित लौकिक रूढ शब्दों से प्रभावित होने के कारण चतुर्भुजी विष्णु भगवान् को समझ लेते हैं, परन्तु यजुर्वेद के अन्य मन्त्र विष्णु शब्द से वाच्य परब्रह्म को द्विभुज ही बतलाते हैं। यथा —

उभाहि हस्ता वसुना पृणस्व-
प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥
—यजु० अ० ५ मं० १६ ।

यस्येमा प्रदिशो यस्य बाहू-
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
—यजु० अ० २५ मं० १२ ।

हमारे दोनों हाथों को सम्पत्ति से भर पूर कर दो, आप अपने दहिने और बांये दोनों हाथों से हमारे कल्याण के लिये दान दो। इसके पहिले मन्त्र में "विष्णोर्नु कं वीर्याणि" द्वारा जिस ब्रह्म का महत्त्व गाया गया है वह द्विभुज है यह बात उसके दूसरे मन्त्र से स्पष्ट कर दी गयी है। उसी प्रकार पचोसवें अध्याय में भी 'जो दोनों हाथों से जगत् की रक्षा करते हैं' यह कह कर परब्रह्म का द्विभुजत्व प्रतिपादन किया है। भाष्यकारों ने भी 'यस्य बाहू भुजौ जगद्रक्षणावितिशेषः' कह कर इसी बात का समर्थन किया है। वे द्विभुज परब्रह्म त्रिपाद विभूतिनायक अयोध्या पति श्रीरामजी ही हैं यह बात अथर्ववेद में पूर्णतः स्पष्ट कर दी गयी है। यथा—

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनामृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥
—अथर्व० १० काण्ड १ अनु० २ सू० २६ मं०

वह ब्रह्म की पुरी अमृत से आवृत्त है, जो उस पुरी को जानता है उसको ब्रह्म (श्रीरामजी) और ब्रह्म के कृपा पात्र (भगवत्पार्षद) चक्षु प्राण और प्रजा देते हैं। अब अगले मन्त्रों में उस पुरी का नाम और स्वरूप वर्णन करते हैं—

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ ३० ॥
अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥ ३१ ॥
तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ३२ ॥
प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम् ।
पुरीं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥ ३३ ॥

— अथर्व० काण्ड १० अनु० १ सूक्त २ मं० ३० से

यदि कोई कहे कि—किस पुरी को जानने के लिये कहते हैं ? तो उसका उत्तर देते हैं कि "यस्याः पुरुष उच्यते" जिसका अधिष्ठाता पुरुष (महापुरुष श्रीराम) है। भगवान् श्रीरामजी की पुरी को जो भली भांति जानता है उसको बाह्याभ्यान्तर दर्शन शक्ति तथा शारीरिक और आत्म बल मृत्यु से पूर्व कभी नहीं छोड़ते हैं, अर्थात् वह अनन्त शक्ति सम्पन्न हो जाता है। वह पुरी दिव्य गुण सम्पन्न भगवत्प्रिय प्रपत्तिनिष्ठ भागवत परिकरों

से परिसेवित है। उसका नाम 'अयोध्या' है। आठ चक्र और नवद्वारों से परिवेष्टित है। अर्थात् उसके आठ आवरणों में नव द्वार मुख्य हैं। उस पुरी में एक बहुत विशाल-भव्य-परम सुन्दर-स्वतः प्रकाशित-स्वर्णमय ऊँचा महामण्डप है। उस स्वर्णमय मण्डप में मण्डप के आत्मा स्वरूप पूजनीय देव विराजमान हैं। उन्हीं को ब्रह्मवेत्ता जानते हैं तथा ध्यान धरते हैं। वह मण्डप तीन अरों पर प्रतिष्ठित है, वह कोश तीन अरों से विरचित है एवं उसका प्रभाव तीनों लोकों में प्रतिष्ठित है। सर्वान्तर्यामी परब्रह्म श्रीरामजी उसी नित्य धाम श्रीअयोध्यापुरी में प्रविष्ट हैं विराजमान हैं। वह अयोध्यापुरी अत्यन्त दिव्य सुखमय तथा प्रकाशमयी है, मन को हरण करने वाली है, पापों को विध्वंश करने वाली है, अनन्त कीर्ति से युक्त है. समस्त पुरियों में श्रेष्ठ है, अतुलनीय अर्थात् अप्रतिम है। ❀

ये श्रुतियां इतनी स्पष्ट हैं कि व्याख्याताओं को शब्दों के

१—'वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्' (भाग ११–५–३३) आदि वचनों द्वारा पुरुष-पुरुषोत्तम-महापुरुष आदि शब्द श्रीरामजी का ही प्रतिपादन करते हैं इसीलिये 'पुरुष सूक्त' में "बाहू राजन्य कृतः" मन्त्र में ब्रह्म का द्विभुजत्व ही प्रतिपादन किया है। श्रीकृष्णजी भी श्रीरामजी के ही अवतार होने से द्विभुज एवं पुरुषोत्तम कहे जाते हैं। गोलोक भी साकेत महाविभूति का एक नाम है।

तोड़ मरोड़ करने की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती, जैसा सविस्तर प्रभावशाली सुन्दर एवं स्पष्ट वर्णन श्रीअयोध्या धाम का वेदों में पाया जाता है वैसा अन्य किसी भी पुर का नहीं मिलता। इन मन्त्रों में स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है कि अयोध्या धाम के मध्य भाग में स्वर्ण मण्डप में जो देव विराजमान हैं वही परात्पर पूर्ण ब्रह्म हैं। विद्वान् लोग उन्हीं को जानते हैं, उन्हीं को प्राप्त करने का सतत प्रयास करते हैं और नित्यसूरि उसी 'वैष्णव पद' श्रीअयोध्या को सदा दिव्य दृष्टि से देखते हैं। उस धाम के नायक द्विभुज श्रीरामजी को छोड़कर अन्य कोई नहीं है, परिशेषात् सिद्ध होता है कि वेद वेदान्त प्रतिपाद्य पर-ब्रह्म श्रीरामजी ही त्रिपाद्विभूति नायक हैं।

❋ त्रिपाद् विभूति और इतिहास ❋

❀ 'विवेशापराजिताम्' वाक्य में अपराजिता अयोध्याजी

❀ इस विषय को 'अथर्ववेद में अयोध्याजी' नामक निबन्ध में सर्व तन्त्र स्वतन्त्र वेदोपनिषद भाष्यकार पंडितराज स्वामी श्रीभगवदाचार्यजी महाराज ने मन्त्र-भाष्य समेत स्पष्ट वर्णन किया है। "राजकोट-श्रीराम महायज्ञ" उद्घाटन के समय आपका जो प्रभावशाली व्याख्यान गुजराती में हुआ था उसमें भी यह विषय अधिक स्पष्ट किया गया है। 'अथर्व वेद में अयोध्याजी' पुस्तक श्रीरामानन्द साहित्य मन्दिर, अट्टास्थान, अलवर, राजपूताना के पते से मिलती है।

का ही दूसरा नाम आया है, साम्प्रदायिक ग्रन्थों में अयोध्याजी का अपराजिता नाम भी प्रसिद्ध है, वाल्मीकि रामायण में श्री-राघवेन्द्र प्रभु ने अपने भक्तों को 'अभयपद' देने की श्रीमुख से प्रतिज्ञा की है, अभयपद भी त्रिपाद् महाविभूति का ही पर्याय शब्द है, श्रीमुख वचन इस प्रकार है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥

— वाल्मीकि रामा० युद्ध काण्ड १८ सर्ग ३३ श्लोक ।

'एक वार शरणागति के लिये मैं तुम्हारा हूँ ऐसी याचना करता है उसको समस्त जीवों से निर्भय पद देता हूँ, यह मेरा व्रत है ।' यह अभय धाम विरजा पार है । यथा—

त्रिपाद्विभूतिरूपं तु शृणु भूधर नन्दिनि !
प्रधानपरमे व्योम्नोरन्तरे विरजा नदी ॥
वेदाङ्ग स्वेद जनिता तोयैः प्रस्नाविता शुभा ।
तस्याः पारे परे व्योम्नि त्रिपाद्भूतिस्सनातनी ॥
अमृतं शाश्वतं नित्यमनन्तं परमं पदम् ।
निःश्रेयसञ्च निर्वाणमभयं मोक्षमुच्यते ॥

—पद्म पुराण, उ० खं० ६ अ० २२७ श्लोक ५८ ।

हे पार्वति ! त्रिपाद विभूति का स्वरूप सुनो, प्रधान [मायामयनश्वर जगत] और पर व्योम [नित्य चिन्मय प्रभु धाम] दोनों के वीच में विरजा नदी है । वेदाङ्गस्वेद से प्रवा-

हित ज्ञानमय जल से परिपूर्ण है, उसके दूसरे तट पर उस पार सनातनी दिव्य महाविभूति है, उसको शाश्वत, अमृत नित्य, अनन्त, परमपद, निःश्रेयस, निर्वाण, कैवल्य अभय और मोक्ष आदि नामों से वेद शास्त्र पुकारते हैं। उस परम व्योम के स्वामी श्रीराघवेन्द्र भगवान ही है। यथा प्रमाण—

बाह्यान्तस्तारकाकारं व्योमपञ्चक विग्रहम्।
राजयोगैक संसिद्धिं रामचन्द्रमुपास्महे॥

—शु० यजु० मण्डल ब्राह्मणोपनिषद् अ० १ मं० १

वैकुण्ठाः पंचविख्याताः क्षीराब्धिश्चरमाव्ययम्।
कारणं महावैकुण्ठं पंचमं विरजापरम्।

—भार्गव पुराण, ३ खण्ड अ० २।

पञ्च परम व्योम [चिदाकाश] ही पञ्च वैकुण्ठ कहे जाते हैं, उनके स्वामी श्रीरामजी तारक ब्रह्माख्य राजयोगैक सिद्धि स्वरूप हैं। उनमें पर वैकुण्ठ विरजापार श्रीसाकेत धाम है। श्रीवाल्मीकि रामायण में भी परम व्योम को परम धाम का ही पर्याय नाम माना है।

यामिच्छसि महाबाहो! तां तनुं प्रविशस्विकाम्॥९॥
वैष्णवीं तां महातेजो यद्वाकाशं सनातनम्॥
त्वं हि लोकगतिर्देव नत्वां केचिद्विजानते॥ १० ॥

—श्रीमद्वाल्मीकि रामा० उत्तर० ११० सर्ग श्लो० ९।

हे महावाहो! आप जिस लोक की इच्छा करते हैं, उस

लोक में जायें। आप अपने वैष्णव तेज में अथवा सनातन आकाश में [साकेत] में जायँ। आप ही लोक की परमगति हैं। आपका यथार्थ स्वरूप कोई नहीं जानता।

इस वाक्य में 'सनातन आकाश' परम धाम का ही नामान्तर माना गया है, पाञ्चभौतिक तत्त्वों में जो आकाश है वह सुख-दुःख भय क्लेशादि पूर्ण है परन्तु वह सनातन परम व्योम द्वन्दातीत है। इस धाम का दूसरा प्रतीक मृत्यु भुवन में श्रीअयोध्याजी हैं, उसका भी महत्त्व सर्वश्रेष्ठ माना गया है। उपनिषदों में और भी कहा है—

यत्सप्तभूमिकाविद्या वेद्यानन्द कलेवरम्।
विकलेवर कैवल्यं रामचन्द्रपदं भजे॥

– ऋग्वेदीय आत्तिकी उपनिषद् अ० १ मं० १

ॐ कारार्थं तयायातं तूर्योङ्कारार्थभासुरम्।
तूर्यं तुर्य त्रिपाद्राम स्वमात्रं कलयेऽन्वहम्॥

– वेदशिखोपनिषद् अ० १ मं० १।

जो ज्ञान की सप्त भूमिका के द्वारा जाने जाते हैं और सच्चिदानन्दमय जिनका दिव्य कलेवर है, जो प्राकृत देह रहित हैं उन कैवल्य मोक्ष स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी महाराज के चरणों का भजन करता हूँ। जो ओंकार के अर्थ विचार से समझ में आते हैं जो सबसे पर हैं, उन त्रिपाद् विभूति पति श्रीरामजी का मैं निरन्तर स्मरण करता हूँ' इत्यादि सहस्रों प्रमाण संग्रह किये

जा सकते हैं, श्रद्धालु भावुक भक्तों को तो एकाध ही प्रमाण पर्याप्त है, इस प्रकार वेद-वेदान्त-रामायण पुराण-गीता-उपनिषद् और साम्प्रदायिक रहस्य ग्रन्थों द्वारा त्रिपाद् विभूति नायक श्रीसीता-रामजी का स्वरूप जानकर उस धाम की प्राप्ति करने का पूर्ण प्रयास करना प्रत्येक मनुष्य का मुख्य कर्तव्य होना चाहिये।

❋ त्रिपाद् विभूति और गीता ❋

भगवान् ने श्रीगीताजी में कहा है कि—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन !
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥

—गी० ११ अ० ५४।

"हे अर्जुन ! इस प्रकार मेरा यथार्थ स्वरूप ज्ञान मनुष्य को केवल विशुद्ध प्रेम भक्ति द्वारा ही हो सकता है, और भक्ति द्वारा ही भक्त मेरा दर्शन कर सकता है एवं मुझमें प्रवेश कर सकता है।" यहां पर प्रभु में प्रवेश करना अर्थात् प्रभु के दिव्य धाम में प्रवेश करना ही समझना चाहिये, और वह धाम कैसा है तथा उसको कौन प्राप्त करते हैं, यह भी प्रभु ने गीता जी में ही स्पष्ट कर दिया है। यथा—

ततः पदं तत्परि मार्गितव्यं—
यस्मिन् गता न निवर्तन्तिभूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये—
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥

निर्मानमोहा जितसङ्ग दोषा–
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःख संज्ञै–
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥
न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ ६ ॥

—गीता, अ० १५ श्लो० ५-५-६ ।

इस प्रकार सांसारिक ममता का विनाश करके उस परम पद की खोज करनी चाहिये, जहाँ जाकर मुक्तात्मा फिर कर्मवश लौट कर नहीं आते हैं। उस पद को पाने के लिये उसी परम पुरुष परब्रह्म के शरण जाना चाहिये जिससे यह पुरातन प्रवृत्ति विस्तृत हुई है।

जिन्होंने मान और मोह का त्याग कर दिया है, जिनको सांसारिक संग का दोष किसी प्रकार छू नहीं सकता है, जो निरन्तर अध्यात्म तत्त्व [दिव्य मानसी भावना] में मग्न रहा करते हैं, जो सांसारिक सुख और दुःखादि द्वन्दों से मुक्त हो चुके हैं, वे ही परम ज्ञानी उस अव्यय पद को पाते हैं।

हे पार्थ ! मेरा वह सर्वोत्कृष्ट धाम है कि जिसको प्रकाशित करने के लिये भौतिक सूर्य-चन्द्र और अग्नि की आवश्यकता ही नहीं है, अर्थात् वह स्वयं प्रकाशमय है, जहाँ जाकर जीवों को पुनः कर्म भोग भोगने के लिये संसार में नहीं लौटना पड़ता, वही मेरा दिव्य धाम है।

उस दिव्य धाम के निवासी अक्षर पुरुषों का भी आपने उपदेश दिया है और बद्ध मुक्त जीवों से पर पुरुषोत्तम स्वरूप अपना भी परिचय कराया है। यथा—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥ १६॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥ १७॥
यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥ १८॥
यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥ १९॥

—गीता-अ० १५ श्लो० १६ से १९।

लोक में क्षर और अक्षर दो प्रकार के पुरुष हैं, ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त प्राकृतिक शरीरों से सम्बन्ध रखने वाले सब क्षर पुरुष हैं तथा प्रकृति के संसर्ग से रहित दिव्य धाम निवासी मुक्तात्मा अक्षर पुरुष हैं।

उपर्युक्त क्षर और अक्षर (बद्ध और मुक्त) जीवों से भिन्न उत्तम पुरुष को परमात्मा कहते हैं, वह अविनाशी ईश्वर तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर उनका पालन करता है। मैं क्षर से भी पर हूँ और अक्षर से भी उत्तम हूँ, अतएव लोक और वेद में 'पुरुषोत्तम' के नाम से प्रख्यात हूँ। हे भारत! जो

विद्वान् पुरुष इस प्रकार मेरा पुरुषोत्तम स्वरूप जान लेता है वह सर्वविद् हो जाता है, उसको फिर कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता है इसलिये वह सर्व भाव से सर्वत्र मेरा ही भजन करता है।

जैसे चित् तत्त्व क्षर-अक्षर और पुरुषोत्तम के नाम से तीन प्रकार का है वैसे अचित् तत्त्व भी आचार्यों ने तीन प्रकार का माना है, एक शुद्ध सत्त्व, दूसरा मिश्र सत्त्व और तीसरा सत्त्व शून्य केवल जड़। हमें यहां केवल शुद्ध सत्त्व का स्वरूप दिखाना है, अन्य तत्त्व जानने के लिये तत्त्वत्रय अथवा स्वामी श्रीभगवदाचार्यजी महाराज प्रणीत 'त्रिरत्नी' ग्रन्थ देखना चाहिये। दिव्य धाम शुद्ध सत्त्वमय है, उसमें निवास करने वाले मुक्तात्मा और नित्य मुक्त अक्षर पुरुष कहाते हैं, तथा उन के अधीश्वर उत्तम पुरुष--महापुरुष-पुरुषोत्तम परमात्मादि नामों से अभिधेय प्रभु श्रीरामजी ही है।

❋ त्रिपाद् विभूति का स्वरूप ❋

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्

यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः।

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति

यईत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ श्वे० ४।८।

यह श्रुति प्रतिपादन करती है कि—"वेद प्रतिपादित वह परम पद सर्वदा अक्षर है, उसमें भगवत्तत्त्व विज्ञानी दिव्यात्मा ही निवास करते हैं, जो उस परमपद को नहीं जानता वह वेदों को लेकर क्या करेगा ? जो उसको जानता है वही उस परम व्योम प्रकाशमय धाम में निवास करता है।" उसको जानने का मार्ग भी श्रुति बतलाती है—

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्

— मुण्डक ३-१-६।

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा। ज्ञान प्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः॥

— मुण्डक ३-१-८।

सत्य का ही विजय होता है, असत्य का कभी नहीं, सत्य से ही देवमार्ग का विस्तृत प्रभाव है, सन्मार्ग द्वारा चल करके ही पूर्ण काम ऋषिगण उस परमपद को पाते हैं जो विशुद्ध सत्य का परम निधान है। वह पद इन आंखों से नहीं देखा जा सकता, न वाणी से वर्णन किया जा सकता है, अन्य देवताओं की उपासना अथवा तप-जपादिक अन्य कर्मों द्वारा भी उस पद को ग्रहण नहीं कर सकते हैं, विशुद्ध सत्त्व उस पद को सद्गुरु की कृपा द्वारा लब्ध ज्ञान के प्रसाद से निरन्तर भावपूर्वक ध्यान करने वाला ही देख सकता है।

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्म विदो विदुः ॥
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं—
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

—मुण्डक--२, २ ९--१० ।

'हिरण्यमय परम कोश में रजरहित--निष्कल--ब्रह्मभूत परम धाम है, वह परमशुभ्र समस्त ज्योतियों का भी ज्योति--र्मय परम तेज है, उसको आत्म तत्त्वज्ञ महात्मा पुरुष ही जानते हैं। न वहां सूर्य प्रकाश करता है और न चन्द्रमा तथा न तारा-गण ही, बिजली का भी वहां प्रकाश नहीं होता फिर अग्नि का प्रकाश तो कहां से हो सके ? उसी की प्रभा से ये अनन्त ब्रह्मा-ण्ड प्रकाशित होते हैं, यह समस्त तेज उसी के तेज से तेजस्वी हो रहा है ।' हिरण्यय कोश श्रीअयोध्या साकेत परम धाम के प्रकाश का ही नामान्तर हैं, यह बात आगे आ चुकी है। इस प्रकरण के आरम्भ में 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्' श्रुति में जो 'परम व्योम' शब्द आयाहै वह भी त्रिपाद् विभूति (चिदाकाश) का ही नामान्तर है।

जगत् और जीव भगवान् के भोग्य पदार्थ हैं और प्रभु उनके एक मात्र अविनाशी भोक्ता हैं, इसीलिये 'जगत्सर्वं शरीरं

महर्षि वाल्मीकि शोध संस्थान 878 अयोध्या

ते' (वा० रा०) आदि वाक्यों द्वारा जगत् को भी ब्रह्म का ही शरीर माना है । भगवान् विशुद्ध सत्त्वमय होने के कारण वे विशुद्ध सत्त्वघनी भूत दिव्य जगत् के चिद्विलास में ही रमण करते हैं । मिश्रसत्त्व अथवा जड जगत् का भोग तो जीव करते हैं जिसके कारण वे जन्म मरणादि दुःख द्वन्द भोगते हैं, समस्त जगत् के स्वतन्त्र स्वामी होते हुए भी जड जगत् के भोगों से प्रभु सर्वथा निर्लिप्त ही रहते हैं, विशुद्ध सत्त्व ही त्रिपाद्विभूति धाम है, अतः यहां विशुद्ध सत्त्व का दिग्दर्शन करा देना भी आवश्यक है ।

❋ 'विशुद्ध सत्त्व--त्रिपाद् विभूति' ❋

'त्रिगुण द्रव्य व्यतिरिक्तत्वे सति सत्त्ववत्वम्-शुद्धसत्त्वम्' तीनों गुण और लौकिक द्रव्यों से अतिरिक्त विशुद्ध तत्त्व को ही 'शुद्ध सत्त्व' अथवा 'नित्य विभूति' कहते हैं । वह नित्य-ज्ञान जनक और आनन्द मूलक है. वह विभूति भगवान् के और नित्य मुक्तात्माओं के सङ्कल्पानुसार भगवत्सेवा के लिये भोग के उपकरण स्वरूप नाना प्रकार के भोग्य पदार्थ बन जाती है, गोपुर-प्राकार-मण्डप गृह-विमान मन्दिर-वन उपवनादि भोग स्थान तथा चन्दन-पुष्प-माला-वस्त्र भूषण-आयुध नैवेद्य आदि भोग साधन भी बन जाती है । ईश्वर के दिव्य अप्राकृत शरीरादि से भोग्य भी बन जाती है । उस विभूति में भगवान् के और भगवद्भक्तों के शरीर भगवान् की इच्छा

तथा भगवत्सेवा के लिये भागवतों की इच्छानुसार ही नाना विध हो जाया करते हैं।

यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति-
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥

– भाग० ३, ९-११।

इत्यादि वचनानुसार भक्त जैसी भावना करते हैं वैसे-वैसे ही स्वरूप प्रभु उन पर दया करके धारण करते हैं, वैसे ही नित्य धाम निवासी भक्त भी भगवान् की इच्छानुसार उनकी सेवा के लिये नाना प्रकार के स्वरूप धारण कर प्रभु कृपा के भाजन बनते हैं।

'स एकधा भवति, त्रिधाभवति, पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशस्मृतः, शतञ्च दशचैकश्च सहस्राणि च विंशतिः ।'

— छान्दोग्य-७ २६-२।

एक ही समय में एक ही आत्मा आवश्यकता और इच्छानुसार हजारों प्रकार के रूप धारण कर सकता है। उपर्युक्त श्रुति भी यही कहती है।

यं यं भावं समुक्तात्मा परधामनि वाञ्छति।
तदानीमेव स भावस्तमाप्नोति हि सर्वथा ॥

इत्यादि अनेकों प्रमाण हैं। नित्य धाम स्वयं निरवधिक ज्योतिर्मय है, नित्य जीव मुक्तजीव और ईश्वर भी उसका

परिच्छेद नहीं कर सकते हैं, वह स्वयं प्रकाश स्वरूप है। उसको यथार्थतः स्वयं परब्रह्म प्रभु और उनके नित्य सूरि श्रीहनुमदादिक ही जानते हैं, 'शुद्ध सत्त्व अपरिच्छेद्य है' ऐसा ज्ञान हो जाना ही सर्वज्ञता है, जिसने उसको जान लिया उसको फिर कुछ जानना अवशिष्ट नहीं रह जाता। इयत्ता शून्य वस्तु की इयत्ता न जानने से सर्वज्ञता में कोई बाधा नहीं आती प्रत्युत वह एक विशेष गुण रूप हो जाता है, इसलिये नित्य शुद्ध सत्त्व का परिच्छेद न करने के कारण ईश्वर की सर्वज्ञता में कोई दोष कभी नहीं आ सकता है। शुद्ध सत्त्व की नित्यता और ज्ञान जनकता के विषय में प्रमाण पहले ही आ चुके हैं।

'क्षयं तमस्य रजसः पराके' 'तमसः परस्तात्' 'पञ्चशक्तिमये दिव्ये शुद्धसत्त्वे सुखाकरे' 'नित्यमनादिनिधनम्' 'तदक्षरे परमे व्योमन्' 'आदित्यवर्णंतमसः परस्तात्' 'यत्रदेवानामधिदेवआस्ते' 'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः' 'विष्णोः पदं निर्भयम्'

इत्यादि, और अनेकों प्रमाण इसी ग्रन्थ में आगे भी आवेंगे। यह शुद्ध सत्त्व स्वयं प्रकाश होते हुए भी बद्ध(संसारी) जीवों को प्रकाशित नहीं होता है, उलूक को सूर्य नहीं दीखता, क्योंकि उसको अन्धकार प्रिय है, प्रकाश पथ की ओर वह झांकना ही नहीं चाहता, उसी प्रकार अज्ञानी जीवों को स्वतः अपने आत्म तत्त्व का भी बोध होना दुर्लभ है, तब उन देहा-

भिमानियों को शुद्ध सत्त्व का ज्ञान न होने से उसकी स्वयं प्रकाश सत्ता में कोई बाधा कैसे आ सकती है ? उलूक के अन्धकार में रहने से सूर्य का अस्तित्व नहीं मिट सकता है।

यदि कोई कहे कि शुद्ध सत्त्व स्वयं प्रकाश है तो आत्मा और ज्ञान से इसमें क्या अन्तर है ? क्योंकि ये दोनों भी स्वयं प्रकाश ही हैं ? इसका समाधान यह है कि आत्मा को 'मैं हूँ' ऐसी अहं प्रतीति होती है, परन्तु शुद्ध सत्त्व को अहं प्रतीति न होकर 'यह है' इस प्रकार 'इदं त्वेन' प्रतीति होती है। दूसरा भेद यह है कि—आत्मा अथवा ज्ञान शरीर रूप में परिणत नहीं हो सकते परन्तु शुद्ध सत्त्व सब कुछ बन सकता है। तीसरा भेद, शब्द स्पर्शादिकों का आश्रय ज्ञान नहीं है उनका ग्राहक है परन्तु शुद्ध सत्त्व उनका आश्रय भी है। अतः उनसे शुद्ध सत्त्व भिन्न ही है।

कितने लोक निरतिशय भगवत्प्रकाश के नित्य अविच्छिन्न सम्बन्ध के कारण ही शुद्ध सत्त्व को स्वयं प्रकाश मानते हैं। उसी प्रकार आनन्दमयत्वादि गुण भी परब्रह्म के अबाध संयोग से ही हैं ऐसा मानते हैं। जो कुछ भी मानो उस विभूति में ऐसे-ऐसे अत्यन्त अविच्छिन्न अनुकूल संयोग मानने पर भी यह तो निर्विवाद है कि वह धाम अव्यय आनन्द का निरतिशय एक मात्र साम्राज्य है।

उस धाम के निवासी मुक्तात्माओं के शरीर भी उसी शुद्ध सत्त्व से निर्मित होने के कारण दिव्य ही होते हैं, कर्मकृत

प्राकृत शरीरों के परिग्रह से रहित होने के कारण ही "अशरीरं वावसन्तम्" आदि वाक्य श्रुतियों में कहे गये हैं। ऐसे ही— 'इन्द्रियच्छिद्र विधुरा द्योतमानाश्च सर्वशः' इसका भी कर्मकृत प्राकृत इन्द्रियाभाव में ही तात्पर्य है।

जैसे उपासकों को आनन्द प्रदान करने के लिये भगवान् शरीर धारण करते हैं वैसे ही भगवत्प्रीत्यर्थ मुक्तात्मा भी शरीर धारण करते हैं। प्रभु का शरीर तो सर्वदा स्वसंकल्पाधीन ही रहता है परन्तु भागवतों का शरीर कभी तो केवल भगवत्सङ्कल्पाधीन होता है और कभी-कभी भगवत्संकल्पानुप्राणित स्वसंकल्पाधीन भी होता है। वे कभी सशरीर और कभी अशरीर रहते हैं, वैसे ही कभी सेन्द्रिय और कभी निरिन्द्रिय भी रहते हैं। तात्पर्य यह है कि मुक्तात्माओं की सभी क्रियायें केवल भगवत्प्रीत्यर्थ ही होतीहै, वे सशरीर-अशरीर-सेन्द्रिय-निरिन्द्रय आदि नाना रूप धारण कर उनकी सेवा का परम लाभ पाते रहते हैं। इसीलिये कहा गया है कि—

यदा कामयते मुक्तो जगदीशस्य पादयोः।
आत्मनः पादुकारूपं तस्मै तत्प्राप्यते तदा ।।
यदा कङ्कणभावं वा कुण्डलं वा परात्मनः।
वाञ्छति च तदास्वामी तदप्यस्मै प्रयच्छति ॥

कुण्डल-कङ्कण-पादुका-हार-छत्रादि रूप, अथवा वसन्तोत्सव-शरदुत्सवादि रूप, अथवा सखा-सखी-दास-पुत्र-अश्व-गज-

पशु-पक्षी आदि जिन-जिन रूपों से वह सेवा करना चाहता है प्रभु मुक्तात्मा की इच्छा मात्र से वह रूप उसे देते हैं, और जब वह एक रूप छोड़कर दूसरा रूप धारण करना चाहता है तब उसे वैसा ही हो जाने का अधिकार मिल जाता है। प्राकृत देह धारियों को स्वेच्छा मात्र से देह परिवर्तन करने का कोई अधिकार नहीं रहता, अमुक कर्म भोग अमुक देह में भोग लेने के बाद ही देहान्तर मिलता है, और उसको अपने पूर्व देहों का विस्मरण हो जाता है, ज्ञान का संकोच विकाश भी होता रहता है परन्तु दिव्य धाम में ये सब नहीं होता, किसी भी देह में जरा मरण अङ्ग भङ्ग रोग शोक आदि विकार भी नहीं होते। वहां काम-क्रोध द्वेष-मोहादिदुर्गुणों का अत्यन्ताभाव होने से परस्पर एक दूसरे की इच्छा का विघात भी कभी कोई नहीं करता, सर्वज्ञता होने से जो सेवा एक भक्त लेना चाहता है उसमें दूसरा दखल नहीं डालता, सबकी अपनी मर्यादा और रुचि का संरक्षण करने का अवसर भगवत्कृपा से अनायास उपलब्ध हो जाता है, तात्पर्य यह है कि वहां प्रेम और आनन्द का अखण्ड साम्राज्य है।

❊ त्रिपाद् विभूति का मार्ग ❊

'अर्चिरादिना तत्प्रथितेः। ४। ३। १।' ब्रह्मसूत्र के सिद्धान्त से अर्चिरादि मार्ग ही भगवद्धाम का एक मात्र मार्ग है। उसका क्रम आचार्य शिरोमणि भगवान् श्रीरामानन्द महाप्रभुजी ने इस प्रकार वर्णन किया है—

सत्सङ्गतोसौ विगतस्पृहो मुहुः श्रीशं प्रपद्याथ गुरूपदेशतः। कर्माखिलं सम्परिभुज्यचात्मवान्प्रारब्धमेवं प्रहतान्यकमंकः ॥ १६७ ॥ न्यासात्स्वतन्त्रेश्वर जातसद्दया निर्लून मायान्वय एव देशिकः। हार्दोत्तमानुग्रह लब्धमध्य सन्नाडीशुभद्वार बहिर्विनिर्गतः ॥ १६८ ॥

सत्सङ्ग के प्रभाव से सांसारिक वासनाओं से मुक्त हो जाय, श्रीगुरु महाराज की कृपा द्वारा श्रीरामजी की शरणागति ग्रहण कर ले, दैहिक भोग भोगकर प्रारब्ध कर्म का धैर्य पूर्वक विनाश कर डाले। प्रपत्ति की दृढ़ श्रद्धा द्वारा भगवत्कृपा के बल से अविद्या का पूर्णतः विनाश करके अन्त समय में मध्यस्थ शुभ सुषुम्ना नाड़ी द्वारा शरीर से बाहर निकल जाय।

ततोऽर्चिरध्वानमुपैति मुक्तकस्तथार्चिषोऽहो दिनतः सुरार्चितः। आपूर्यमाणं विविधैश्चवासरैः पक्षं ततश्चोत्तम सौख्य निस्पृहः ॥ १६९ ॥ पक्षादुदङ्मासमथो षडात्मकं तस्माच्च संवत्सरमब्दतो रविम्। चन्द्रं ततश्चन्द्रमसोऽथ विद्युतं स तत्रतत्राऽखिल देवपूजितः ॥ १७० ॥

—श्रीवैष्णव मताब्ज भास्करः।

वह प्रपन्न अर्चिमार्ग को प्राप्त होता है, वहां से दिन-पक्ष उत्तरायण-संवत्सर-सूर्य—चन्द्र--विद्युतादि लोकों में जाता है। वहां उन-उन लोकों के स्वामी देवता उसकी पूजा करते हैं।

परं पदं प्राप्य च भाग्य कौशलादमानवो ब्रह्मपथेन तेन सः । प्रपद्य सायुज्यमधीश्वरस्य तत्तेनैव साकं सततं प्रमोदते ॥१७१॥ शीतान्तसिन्ध्वाप्लुत एवधन्यो गत्वा परब्रह्म सुवीक्षितोऽथ । प्राप्यं महानन्द महाब्धिमग्नो नावर्तते जातु ततः पुनः सः ॥ १७२ ॥

—श्रीवैष्णव मताब्ज भास्करः ।

इस प्रकार उस ब्रह्मपथ से चलकर परम पद साकेत लोक को प्राप्त कर सायुज्यमुक्ति पाकर श्रीरामजी के साथ सर्वदा ब्रह्मानन्द का भोग करता हुआ कृतार्थ होता है। विरजानदी में स्नान कर जो साकेत में प्रभु की कृपामृत वर्षिणी अनुपम कटाक्ष का दर्शन पाता है वह आनन्द के महासमुद्र में मग्न हो जाता है, फिर कभी लौट कर संसार में नहीं आता । यही बात वेदान्त सूत्र और उपनिषदों में भी कही है—

'स एनान् ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथः एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानव मावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते ।'

—छान्दो० ४--१५-६ ।

अर्थात् "जो इस अर्चिरादिमार्ग से ब्रह्म के पास जाता है वह पीछा नहीं लौटता, इस देवमार्ग अथवा ब्रह्ममार्ग से जाने वाले मृत्यु संसार में पीछे नहीं आते ।" मार्ग क्रम ऊपर आ चुका है । यदि कोई शंका करे कि—

आब्रह्म भुवनाल्लोका पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन !

—गीता, ८ अ० १६ ।

इस वचन से तो ब्रह्म लोक गामी भी पीछे आते हैं यही सिद्ध होता है तो उसका उत्तर यह है कि—यहां ब्रह्म शब्द ब्रह्मा प्रजापति का वाचक है, और उपनिषद के उपर्युक्त मन्त्र में ब्रह्म-शब्द आया है वह परब्रह्म का वाचक है गीता के उपर्युक्त श्लोक से पहले श्लोक में प्रभु ने उसी परब्रह्म निज धाम को लक्षित करके कहा है कि—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥

—गीता, ८ अ० १५ ।

'परम सिद्धि को प्राप्त महात्मा मुझे पाकर दुःखमय नाश-मान् इस संसार में पुनर्जन्म नहीं पाते हैं।' यदि ब्रह्मलोक ही मानें तो भी –

ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसंचरे ।
परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम् ॥

अथवा –

'ते ब्रह्मलोके परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे'

—मुण्डक० ३ । २ । ६ ।

"अर्थात् महाप्रलय के समय ब्रह्मलोक का जब विनाश होता है तब अर्चिरादि मार्ग से जाने वाले कृतार्थ आत्मा ब्रह्मा के समेत परमपद में प्रवेश कर जाते हैं" आदि प्रमाण अपुनरावृत्ति ही सिद्ध करते हैं।

त्रिपाद विभूति में मुक्तात्माओं का अधिकार

'एवमेवैष आत्मा सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परंज्योतिरूप सम्पद्य स्वेनरूपेणाभि निष्पद्यते'

—छान्दो० ८।१२।२।

'इस प्रकार प्रशान्तात्मा इस देह से निकल कर परम ज्योतिरूप ब्रह्म को पाकर अपने स्वरूप (दिव्य रूप) को प्राप्त कर लेता है।'

सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता।

—तै० आ० १।२।

रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।

—तै० २।७।

ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः। स एको ब्रह्मण आनन्दः श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।

—तै० २।८।

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् नविभेति कुतश्चन।

—तै० २-६।

वह समस्त कामनाओं का पूर्ण फल परब्रह्म के साथ पूर्ण काम होकर भोगता है। वह रस रूप है, इस रस (ब्रह्म) को पाकर जीव आनन्दी हो जाता है। प्रजापति का सर्वोत्कृष्ट जो आनन्द उससे सौगुना परब्रह्म का आनन्द है, वह काम रागा-

दिकों से कभी नष्ट नहीं हो सकता। इस आनन्द को पाकर जीव किसी से भयभीत नहीं होता, मन और वाणी से सांसारिक लोगों की गति वहां नहीं पहुँच सकती। उस धाम में उसको इच्छा होती है वह अनायास ही प्राप्त हो जाता है, वह भाग्यवान् पिता-माता-भाई आदि किसी भी सम्बन्धी का स्मरण करता है तो सङ्कलप मात्र से वे सब उपस्थित हो जाते हैं। 'स यदि पितृ लोक कामो भवति सङ्कल्पादेवास्य पितरः समुपतिष्ठन्ति' (छान्दो० ८। २। १) इत्यादि वचन यही बात सिद्ध करते हैं। यहां इतना स्मरण रखना चाहिये कि मुक्तात्मा सत्य सङ्कल्प होते हुए भी पूर्ण काम हो जाने से स्वतंत्र कुछ भी इच्छा करता ही नहीं है। 'तत्सुख सुखित्त्व' ही उसका स्वभाव हो जाता है, फिर भी साधनावस्था में जिन जीवों के उद्धार की या जिन रूपों से प्रभु सेवा करने की भावना वह करता है प्रभु भक्त रुचि पूर्ण करने को उसकी पूर्ति कर देते हैं। इसलिये भगवत्संकलपानुप्राणित संकल्प ही पितरादिकों का स्मरण करा कर उनके उद्धार का कारण बन जाता है।

'निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति' (मुण्डक-३। १। ३)

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः। (गीता)

इत्यादि वचनों में जो ब्रह्म की समानता मुक्तों को कही गई है वह 'भोग मात्र साम्यलिङ्गाच्च' (ब्रह्मसूत्र-४-४-२१) और 'जगद् व्यापार वर्जं प्रकरणाद सन्निहितत्वाच्च' (ब्रह्म-सूत्र ४-४ १७) आदि प्रमाणों से ईश्वर के साथ दिव्य ऐश्वर्य

भोग की समानता ही समझनी चाहिये, जगत् के उद्भव प्रलय-पालनादि व्यापार से उनको कोई सम्बन्ध नहीं है। भगवत्सङ्कल्प से उनकी सभी लीलायें अनुप्राणित रहती हैं। स्वतन्त्रसत्ता का वे उपभोग कभी नहीं करते।

❋ त्रिपाद् विभूति के अधिकारी ❋

कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः ॥

— श्रीमद्वाल्मीकि रामा० बाल कांड–६। ८।

कामी क्रोधी-कायर-क्रूर पुरुष, अज्ञानी और प्रभुपद प्रेम रहित नास्तिक कभी अयोध्या [परमपद] को देख भी नहीं सकते।

प्राकृतैश्चक्षुभिर्नैव दृश्यते सा कथञ्चन।
देहत्रय विनिर्मुक्ता रामभक्ति प्रभावतः ॥
तुरीय सच्चिदानन्दरूपाः पश्यन्ति तां पुरीम् ॥

—वशिष्ठ संहिता, २६ अ० २५--२६।

प्राकृत चक्षुओं से वह धाम कभी नहीं देखा जा सकता, स्थूल-सूक्ष्म-कारण तीनों देह से मुक्त श्रीराम भक्ति के अतुल प्रभाव से सच्चिदानन्द स्वरूप जीव ही उस दिव्य धाम को देख सकते हैं। गीता में भी—

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

गीता, अ० १८। ५५।

'मैं जैसा हूँ और जो हूँ, वह तत्त्व भक्ति द्वारा ही मनुष्य जान सकता है, भक्ति द्वारा यथार्थतः मुझे जानकर पश्चात् वह मेरे धाम में प्रवेश करता है।' इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य भक्ति द्वारा ही प्रभु के धाम का अधिकारी बन सकता है अन्य कोई साधन ऐसा समर्थ नहीं है जो दिव्य धाम तक पहुँचा सके।

सर्व कर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥

– गीता, १८। ५७।

संसार के नित्य नैमित्तिक कर्म करते हुए भी मेरा शरणागत भक्त मेरी कृपा से शाश्वत-अविनाशी-पद प्राप्त कर लेता है। ऐसे भक्त कर्मों का अनुष्ठान न कर केवल प्रभु पद रज पर ही निर्भर रहें तो भी उन्हें कर्मबन्धन से मुक्ति एवं प्रभु कृपा का परम लाभ प्राप्त हो जाता है।

देवर्षि भूताप्तनृणां पितॄणां न किङ्करो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतोमुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥

—श्रीमद्भाग० ११-५-४१,

"जो सर्व भाव से कपट छोड़ कर जगच्छरण्य प्रभु के शरण चला जाता है वह देव-ऋषि-भूत पितर एवं मनुष्यादि सभी की दास्यता और ऋण से मुक्त हो जाता है।" तात्पर्य यह है कि वह प्रभु धाम का भागी बन जाता है। इस बात को और भी स्पष्ट करें—

तत्तेनुऽकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्म कृतं विपाकम् ।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥

— भाग० १० अ० १४--८ ।

'अपने किये हुए कर्मों का प्रारब्ध भोग भोगते हुए भी-निरन्तर आपकी कृपामयी शुभ दृष्टि को देखने की सर्वदा कामना रखकर हृदय-वाणी और शरीर से आपके श्रीचरणों में विनय पूर्वक प्रणाम करता हुआ जो जीवन व्यतीत करता है वह मुक्ति-पद [परम धाम] का हक हिस्सेदार हो जाता है।' श्रीब्रह्माजी के इस वचन से भगवच्छरणागति ही एक मात्र प्रभु पद प्राप्ति का प्रतापी साधन सिद्ध होता है। इस विषय को साम्प्रदायिक ग्रन्थों में और मन्त्रार्थ रहस्य में अधिक स्पष्ट किया गया है।

मायातीते महादिव्ये साकेते रामवल्लभे ।
नित्यास्थितिः सदाभाव्या स्वात्मनः योगिदुर्लभे ॥

— सिद्धान्त दीपक ४२, श्रीअनन्तानन्द स्वामी प्रणीत ।

❋ चतुष्पाद--विभूति ❋

परब्रह्म को उभय विभूति नायक कहते हैं, यह विभूति जिसे हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं उसका भी अन्त पाना कठिन ही नहीं असम्भव ही है। इस एक प्रकार के ब्रह्माण्ड की ही भांति अन--न्त कोटि ब्रह्माण्ड प्रभु के एक एक रोम में विराजमान हैं, इसी

लिये वे अनन्त विभूति नायक भी कहलाते हैं। शास्त्र और सन्त उस विभूति को दो भागों में विभक्त करके विद्या-अविद्या अथवा त्रिपाद और एक पाद विभूति के नाम से पुकारते हैं। वे चार पाद इस प्रकार हैं—

अविद्यापाद १ विद्यापाद २, आनन्दपाद ३, तुरीय (अमृत)पाद ४,

प्रथम अविद्या पाद में ही समस्त प्रपञ्च का संकोच विकास हुआ करता है, शेष तीनों पाद नित्य सनातन दिव्य विभूति में परिगणित हैं। प्रभु उन दोनों प्रकार की विभूति के स्वतन्त्र नायक हैं, इसलिये 'जगत्सर्वं शरीरं ते' (वा० रा० उ० कां०) कहा गया है। ईश्वर के साथ जगत् और जीवों का अपृथक् सिद्धि सम्बन्ध है। एक पाद विभूति (प्राकृत जगत्) में प्रभु अन्तर्यामी रूप से विराजमान हैं, कभी-कभी नर लीला करने के लिये माया के गुणों को ग्रहण करने का भी नाटक करते हैं, लोग उन्हें सोपाधिक ब्रह्म भी कहते हैं। त्रिपाद् विभूति में अविद्या प्रवेश नहीं कर सकती, इसलिये मायागुण रहित होने के कारण उस धाम को निर्गुण-निष्कल निरञ्जन धाम भी कहते हैं। यथार्थतः वह अनन्त कल्याण गुण गणाकर हैं। जैसे मुकुट-कङ्कणादि भेद होते हुए भी स्वर्णमय ही आभूषण होते हैं, वैसे ही आनन्द-अमृत-विद्या-पाद के भेद होते हुए भी वह धाम यथार्थतः सच्चिदानन्दमय ही है। अविद्या पाद भौतिक जगत् का वर्णन भागवतादि पुराणों में विस्तार पूर्वक है, विद्यापादादि दिव्य धाम का वर्णन पाठक

आगे पढ़ चुके हैं। अब वही धाम श्रीअयोध्या साकेतादि नाम से प्रसिद्ध है, इस विषय पर दो एक और प्रमाण देकर निबन्ध पूर्ण करता हूँ—

अयोध्या नन्दनी सत्या धाम साकेत इत्यपि।
कोशला राजधानी च ब्रह्म पूरपराजिता॥
अष्ट चक्रा नवद्वारा विमला धर्मसम्पदा॥

—शिव संहिता, ५ पटल २० अ०

अयोध्यानगरी नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी।
यस्यांशांशेन वैकुण्ठा गोलोकादि प्रतिष्ठिता॥

—वशिष्ठ संहिता, ८७ अ०

याऽयोध्या सा सर्वं वैकुण्ठानामेव मूलाधारा प्रकृतेः परातत्सद् ब्रह्ममयी विरजोत्तरा दिव्यरत्न कोशाढया, तस्यामेव श्रीसीतारामयोर्विहारस्थलमस्ति।

—अथर्व वेद उत्तरार्धीय श्रुतिः।

न यद्रविर्भासयते न चन्द्रो नैवानलः स्वप्रभया प्रदीप्तम्।
यत्रांशिनो ब्रह्म हरीश्वराणां तथाऽखिलानां जगतां वसन्ति॥
तत्रापि सत्याखिल लोकवन्द्या स्थानं परं रामसुपाश्रितानाम्।
न विद्यते कश्चिदुपाय एव विनैक भक्त्या यदवाप्तये च॥

—याज्ञवल्क्य संहिता, ३-१२-१५।

अविनश्वरमेवैकमयोध्यापुरमद्भुतम् ।
तत्रैव रमतेनाथ आनन्दरस प्लावितः ॥

—शुक संहिता ।

त्रिपाद् विभूतिर्नित्या स्यादनित्यापादमैश्वरम् ।
त्रिपाद् व्याप्तिः परेधाम्नि पादोऽस्येह भवेत्पुनः ॥

—पद्म पुराण, खं० ६ अ० २२७ श्लोक १५ ।

एकांशेन जगत्सर्वं सृजत्यवति लीयति ।
त्रिपाद तस्य देवस्य ह्यमृतं तत्त्वदर्शिनः ॥

—लोमश संहिता ।

देवानां पूरयोध्या, तस्यां हिरण्ययः कोशः ।

—सामवेद तैत्तरिय श्रुतिः ।

इत्यादि सैंकडों प्रमाण संग्रह ग्रन्थों में और मूल ग्रन्थों में पाये जाते हैं। आगे भी कई आ चुके हैं, अब अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं है, सुज्ञ पाठकों के लिये पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत की जा चुकी है। अब तो हमें चाहिये कि हमारे पूर्वजों की भांति "वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्" मैं उस महापुरुष को भली भांति जानता हूँ "नमामि रामं परमं परास्तात्" उस परमेश्वरों के भी परमेश्वर श्रीराम को मैं प्रणाम करता हूँ, घोषणा करते हुए प्रभु धाम के पथ पर अग्रगामी बन जायँ और परमवैष्णव

सद्गुरु के शरण जाकर विधिवत् श्रीवैष्णवी-दीक्षा ग्रहण कर परम धाम के परम अधिकारी बन जाना चाहिये, जीवन को श्रीराम प्रेम रस में सराबोर कर भवरस से विरत हो जाना चाहिये। जिस दिन भारत निवासी इस परम तत्त्व को समझ लेगें उसी दिन समस्त बन्धनों से मुक्त होकर अपने दिव्य साम्राज्य को पाकर कृतार्थ हो जायँगे, यथार्थ स्वराज्य की रूप रेखा समझ लेने पर भौतिक राज्य और आध्यात्मिक स्वराज्य दोनों हस्तामलकवत् प्राप्त हो जायँगे। प्रभो! इस आपकी भूली प्रजा को अपने धाम का मार्ग दिखाकर कृतार्थ करो।

"तमसो मा, ज्योतिर्गमय"
मृत्योर्मा अमृतं गमय।
असतो मा सद् गमय॥
श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु॥

महर्षि वाल्मीकि शोध संस्थान
878
अयोध्या

श्रीहनुमत् प्रेस, श्रीअयोध्याजी।